राजस्थान में लोकगायन का उद्भव एवं विकास

Bhavna Vijay Mankar[1]* Dr. Pooja Rathore[2]

[1] Research Scholar

[2] Assistant Professor

***सार** – आदिमानव ने जब सूर्य की ऊषा काल की स्वर्णिम रश्मियो राशि चन्द्रमा की रजत किरण, वनस्पतियों का हास पशु पक्षी का विलास मेधान आकाशसिंग झिग बरसात, बादलो का गरमौर घोष वाघु जल-अग्नि का प्रकोप आदिप्राकृतिक उपादनों के सैदयों को देखा होगा तो उसका अकारण पुष दुख से भर गया होगा तथा उसकी भावाभिव्यक्षि वह अपने अन्तःकरण पर पड़ने वाले प्रभावों के अनुरूप गुनगुनाया अथवा रोना-चिल्लाना मजाया होगा और इसी भावोच्छवासने विकृत यो गीत को जन्म दिया होगा तथा इसी के साथ भाषा भी अस्तित्व में आई होगी। इस प्रकार आदिमानव के जन्म के साथ ही गीत का जन्म भी माना जाना चाहिए।*

कुंजीशब्द – लोकगायन का उदभव एव विकास

---------------------------------X--------------------------------

प्रस्तावना

आदिमानव ने जब सूर्य की ऊषा काल की स्वर्णिम रश्मियों, रात्रि में चन्द्रमा की रजत किरणों, वनस्पतियों का हास-पशु-पक्षी का विलास, मेघाछन्न आकाश, रिमझिम बरसात, बादलों का गम्भीर घोष, वायु, जल, अग्नि का प्रकोप आदि प्राकृतिक उपादनों के रोद रूपों को देखा होगा तो उसका अन्तकरण सुख दुख से भर गया होगा तथा उसकी भावाभिव्यक्ति। वह अपने अन्तकरण पर पड़ने वाले प्रभावों के अनुरूप गुनगुनाया अथवा रोना-चिल्लाना मचाया होगा और इसी भावोच्छवास ने विकृत रूप में गीत को जन्म दिया होगा तथा इसी के साथ भाषा भी अस्तित्व में आई होगी। इस प्रकार आदिमानव के जन्म के साथ ही गीत का जन्म भी माना जाना चाहिए।

सम्भवत आदिमानव ने वाणी का प्रथम दर्शन गीत के रूप में ही किया था। वह अपने उल्लास की स्थिति मे, आनन्द के अतिरेक में जाने अनजाने गा उठता था और बराबर गाने के स्वर को एक ही प्रकार दोहराता और उतरोतर मधुर बनाता जाता था। मुख से निकली ऐसे ही ऊँचे नीचे स्वर और टूटे फटे बोल जब सुगम व सरल वाणी के रूप में परिवर्तित हुए तो यही लोकगीतो के उदभव में सहायक सिद्ध हुए। लोकगीत उतना ही प्राचीन है जितना मानव का अस्तित्व। जब से मानव ने सभ्यता के प्रांगण में अगडाइयां लेनी आरंग की तभी से संगीत का श्री गणेश हुआ। लोकगीत स्वनिर्मित होते है। इन्हें आदिम मानव का सर्वांगीर्ण संगीत भी कहा जाता है। अत भाषा की उत्पति के साथ जब मनुष्य थोडा पारिवारिक एवं सामाजिक बना सनी से लोकगीतो का प्रादुर्भाव हुआ।

राजस्थान में लोक गायन की प्रमुख शैलियाँ:

स्थानीय लोगों की भावनाओं और चिंताओं के सरल वाहक, उनके सुख, और रोजमर्रा की जिंदगी के दुख महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले लोक गायन के प्रमुख विषय हैं, प्रेम, विश्वास और भक्ति हैं। पुरुषों के अपने गीत होते हैं जो मुख्य रूप से बहादुरी, प्रेम, रोमांस आदि से संबंधित होते हैं। कुछ गीत दोनों लिंगों द्वारा गाए जाते हैं जबकि कुछ गीत बच्चों द्वारा गाए जाते हैं। सामान्यतरू इन लोक गीतों को उनकी गायन शैली के आधार पर शीर्षकों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है.

1. भक्ति लोक गीत- ये ज्यादातर धार्मिक प्रकृति के होते हैं और अपने समुदायों के देवताओं या प्रभुओं की स्तुति में गाए जाते हैं।

2. उत्सव लोक गीत- ऐसे गीत विभिन्न त्योहारों और अन्य समारोहों में गाए जाते हैं।

3. प्रेम लोक गीत- इनमें प्रेम, अलगाव, आनंद, भावनाओं आदि के विषय हैं।

4. अनुष्ठान लोक गीत-लोग पुत्र के जन्म, पहले मुंडन और पवित्र धागा समारोह जैसे कई अनुष्ठानों का पालन करते हैं। इन संस्कारों पर गाए जाने वाले गीत इसी समूह के हैं।

5. विविध लोक गीत- इनमें नृत्य के साथ आने वाले गीत और ऐतिहासिक, देशभक्ति, लोरी, बच्चों के गीत आदि शामिल हैं, जो ज्यादातर मनोरंजन के लिए गाए जाते हैं।

लोक गायन का इतिहास

संगीत मानव की सहज प्रवृत्ति है, संगीत विश्व के कण-कण में समाया हुआ है। मानव को जब शब्द का ज्ञान भी नहीं हुआ था, उस समय भी निःशब्द स्वर लहराता हुआ मानव के हृदय से निकल ही पड़ता था, अत्यन्त आनन्द के क्षणों में या विरह-वेदना के रूप में स्वर फूट पड़ते थे।

शब्दों से भी पहले स्वर ने जन्म लिया अथवा स्वर स्वतः ही उत्पन्न हुआ है। लोक के अंतरात में उद्भाशित सहज स्वर एवं शब्द की रचना ही लोक संगीत का रूप धारण कर लेती है, तथा सहज ही मनोरंजक एवं आनन्ददायनी धुनों की रचना स्वतः ही हो जाती है। लोक से तात्पर्य जन साधारण से है, वह चाहे गाँव का रहने वाला हो या शहर का, लोक जीवन में लोक संगीत का अर्थ उस सांस्कृतिक विद्या से लिया जाता है, जो आनन्द एवं उल्लास के अवसरों पर सहज और सामूहिक रूप से गा-बजाकर तथा नृत्य कर सभी का मनोरंजन कर सके। लोक संगीत को देशी संगीत भी कहा गया है। पं. शारंगदेव ने (चौदहवीं शताब्दी) ‘संगीत रत्नाकर’ में लिखा हैः-

“देशे देशे जनानां यह रूच्या हृदयरंजकः।

गनंच वादनं नृत्यं वृहददेशी व्यभिधियते।।”

अर्थात् देश के सभी भागों में छोटे-बड़े लोग अपनी बोली में जिसे प्रेमपूर्वक रूचि के अनुसार गाकर, बजाकर तथा नृत्य कर अपना मन प्रसन्न कर सकते हैं, उसे देशी संगीत या लोक संगीत कहते हैं। लोक संगीत की यह सामान्य प्रवृत्ति है, कि वह लोक रूचि के अनुसार बदलती भी रहती है, क्योंकि उसमें रागों की भांति नियमों का विशेष बंधन नहीं है। अतः लोक संगीत सरल, सुलभ, बंधन रहित एवं परिवर्तनशील है, क्योंकि इसका मुख्याधार लोकरूचि है। विभिन्न क्षेत्रों की परम्पराएं, रीतिरिवाज़, आचार-विचार, तौर-तरीके, भाषा संरकार व्यवहार, मान्यताएँ, धार्मिक अनुष्ठान आदि की सामान्य प्रवृत्तियों के दर्शन वहां के लोक संगीत में होते हैं। प्रत्येक क्षेत्र के लोक संगीत में अपनी-अपनी मिट्टी का गुण होता है। इन प्रादेशिक गायन-शैलियों में कभी-कभी स्वरों की इतनी सुन्दर संरचना होती है कि वह शास्त्रीय गायन शैली (राग) का रूप धारण कर लेती है।

प्रमुख राजघरानों में लोक गायन की विकास यात्रा

जोधपुर का सांगीतिक परिचय स्वतंत्रता से पूर्व जोधपुर मारवाड़ के नाम से जाना जाता था। इसलिये यह कहना 100 फीसदी सत्य होगा, कि आज जो विभिन्न प्रकार की संगीत शैलियां जोधपुर की शान है, उनका विकास प्राचीन एवं मध्यकाल में (के) मारवाड़ क्षेत्र में हुआ। राजपुताने के पश्चिम भाग में स्थित मारवाड़ कलाओं की अभिवृद्धि और सांस्कृतिक विरासत की धरोहर के लिये विश्वप्रसिद्ध रहा है। इस भू-भाग पर राज्य करने वाले शासकों ने प्रत्येक प्रकार से संगीत कला के पल्लवन में अपना योगदान दिया और उन पर आश्रित कलाकारों ने उनका सहयोग लेते हुए, संगीत की विभिन्न शैलियों को विकसित कर, उन्नति के शिखर तक पहुँचाना में सफलता प्राप्त करी।

मध्यकाल में यहाँ के रजवाड़ों को स्थायित्व मिला, इसके साथ ही उन्हें आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त हुई। मारवाड़ के रजवाड़ों ने जहाँ एक ओर शास्त्रीय संगीत को प्रश्रय दिया वहीं दूसरी ओर, लोकसंगीत का भी विकास किया। उस काल की परिस्थितियों के लेकर अनेक लोकगीतों की रचना की गई, जिनमें मारवाड़ी संस्कृति की सहज छवि को देखा जा सकता था।

मध्यकाल में पूरे राजस्थान की ही भांति मारवाड़ में भी पाँच ललित कलाओं को राजाश्रय प्राप्त हुआ। जो कि स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, काव्य और संगीत कला है। इनमें से काव्य और संगीत का प्रभाव क्षेत्र अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत रहा। मारवाड़ में संगीत की दोनों ही प्रणालियों, शास्त्रीय एवं लोक को सम्मान एवं ख्याति प्राप्त हुई। यहाँ के लोकगीतों में लोकसंगीत सशक्त ढ़ंग से मुखरित हुआ। जिसका श्रेय यहां के राजपरिवार को भी जाता है।

मारवाड़ के राजदरबार में शास्त्रीय संगीत ने अपना एक विशेष स्थान बनाया हुआ था। उस समय शास्त्रीय संगीत का एक परिष्कृत व मंझा हुआ स्वरूप था। यही कारण था कि शास्त्रीय राजदरबारों की शान था। लोकसंगीत राजदरबारों में शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा में कुछ कम प्रस्तुत किया जाता था, परंतु यह मारवाड़ के राजपरिवार के जीवन में पीढियों से

एक महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। कारणतः राजघरानों में राजसी परम्पराओं का निर्वाह पूर्णतः रीति-रिवाजों के साथ किया जाता रहा है। यह लोकगीत उन रीति-रिवाजों के साथ किया जाता रहा है। यह लोकगीत उन रीति-रिवाजों के मुख्य अंग के समान होते हैं। जिनसे यह रीतियाँ होती हैं तथा उनमें रस भी भरते हैं। राजमहल में होने वाला किसी भी प्रकार का सांस्कृतिक उत्सव, त्योहार अथवा पूर्व लोकसंगीत की प्रस्तुति होने पर ही पूर्ण माना जाता है और माहौल को भी आनंद से सराबोर कर देता है।

राजमहलों में लोकसंगीत अधिकतर पेशेवर कलाकार गाया करते हैं। यह कलाकार विभिन्न जातियों में के हैं जैसे ढोली मिरासी, दमामी, लंगे, मांगणियार आदि। जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में कलाकार किसी घराने से जुड़कर कला सीखते हैं उसी प्रकार ये पेशेवर कलाकार लोक-संगीत को अपने ही परिवार की नयी पीढ़ियों को सिखाते हैं। यह इनकी खानदानी परम्परा है, जो पीढ़ियों से चली आ रही है। इन सभी जातियों के लोक कलाकारों को राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में अपने-अपने राज्य के राजघरानों, जागीरदारों अथवा धनाढय परिवारों का संरक्षण प्राप्त था।

मध्यकाल में मुगल शहंशाह औरंगजेब के ब्रज क्षेत्र के मंदिरों के पुजारी अपने अराध्य देवताओं के विग्रह लेकर जयपुर, जोधपुर तथा मेवाड़ आदि रियासतों में बसने आ गये। इनके साथ कई दुलर्भ विग्रह तो राजस्थान में आये ही, जिनके लिये अनेक मंदिरों का निर्माण किया गया, किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण विषय यह है कि ब्रज क्षेत्र की समृद्ध संस्कृति और संस्कार भी में आ गये। हवेली संगीत परम्परा भी इसी समृद्ध संस्कृति से विकसित एक अद्भुद गायन शैली है, जिसने राजस्थान की वीरता और बलिदान से रंजित धरती को भक्ति रस से सराबोर कर दिया। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी के काल में गुसाई विट्ठलनाथ जी "श्रीनाथजी" का विग्रह लेकर श्रीनाथ जी का यह विग्रह कदमखण्डी में स्थापित किया गया, और मारवाड़ के प्रत्येक गांव से एक रूपये की सनद लेकर श्री कृष्ण का मंदिर बनवाया गया। मंदिर में प्रभु के कीर्तन, भजन, पूजा एवं आरती के लिये कीर्तनियों पखावज वादकों तथा पुजारियों की नियुक्त किया गया।

जोधपुर नरेश विजयसिंह के काल में बालकिशनजी का मंदिर, गंगाश्याम का मंदिर और अन्य मंदिर बने। इन मंदिरों में भी कीर्तनियों तथा पखावज वादकों की नियुक्ति की गई। इनके पश्चात् राजा मानसिंह के शासन काल में बोल-बाला हुआ, तथा वैष्णव मंदिरों की ही भांति नाथ मंदिरों में भी कीर्तनिये, पखावज वादक, तथा सारंगी वादक नियुक्त किये गये। राजा जसवंत सिंह द्वितीय के राज में (ई. 1873 से 1895) तक वैष्णव तथा नाथ मंदिरों में कीर्तन व भक्ति पदों का गायन नियमित रूप से चलता रहा। मंदिरों में नियुक्त संगीतज्ञों को बन्दगी पर रखा जाता था। बंदगी का अर्थ है कि सौपे गये काम के लिये कोई व्यक्ति विशेष ना जाकर उसके परिवार का कोई भी सदस्य अथवा मित्र उस कार्य को कर सकता है। इस परम्परा के चलते संगीतज्ञों के परिवार जन भी संगीत में रूचि लेने लगे।

मंदिरों में कीर्तन गायन की परम्परा वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक दर्शकों में भी विघमान थी। आनन्दघन, मुरली मनोहर, जग मंदिर, महामंदिर, गुलाबसागर के ऊपर का निज मंदिर, फतेहसागर के ऊपर का मंदिर, आयस देवनाथ की समाधि, गंगाश्याम का मंदिर, संतपीपा का मंदिर, समय रावल का मंदिर, सीलवास गाँव के श्री नाथजी के मंदिरों में आजादी के कुछ दशक पहले तक गायन एवं कीर्तन परम्परा विघमान थी। इन मंदिरों के गवैयों, पखावज वादकों तथा सारंगी वादकों में से कई उच्च कोटि के कलाकार बन गये, तथा संगीत के उस्ताद माने जाने लगे। जिन्होंने जोधपुर नगर के अच्छे संगीतज्ञ एवं कलाकार मौजूद हैं। जब जोधपुर में आकाशवाणी के माध्यम से अपनी कला और नाम दोनों को ही चमकाया।

संगीत की दृष्टि से मारवाड़ क्षेत्र राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक सम्पन्न एवं विस्तृत रहा है। वर्तमान समय में जबकि मारवाड़ क्षेत्र जोधपुर एवं उसके आस-पास के जिलों में सिमट चुका है। उसके बाद आज भी मुख्य रूप से संगीत तथा लोकनाट्यों की ऐसी बहुत से शैलियाँ हैं जो आज भी क्षेत्रवासियों का मनोरंजन कर रही है। जिससे ये स्पष्ट होता है कि यहाँ के राजघरानों के साथ-साथ यहाँ के जनमानस ने भी संगीत तथा लोकनाट्यों के संरक्षण एवं विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

लोक गायन जातियों की उत्पत्ति एवं विकास

पूर्वकाल से ही मानव जाति मे अपने पुशीनी काम तथा सरकारों के अनुकूल ही कार्यों का विभाजन हुआ है। जैसे-जैसे मनुष्य के कदम प्रगति की ओर बढ़ते गये वैसे ही समाज तथा देश में कार्य विभाजन के रूप में अनेक जातियों, उपजातियों बनती ही चली गई। वर्ग, परिवार, वर्ण, जाति आदि गानय समूह विकास कम की श्रृंखला की विभिच कडियाँ है। वैदिक पौराणिक गुन्दयों में गन्धर्व, किलर आदि का उल्लेख है, जो देवताओं के सम्मुख गायन, वादन और नृत्य किया करते थे। मन्दिरों में तथा समाज के मागलिक आवसरों पर गाने बजाने का दायित्व भी कुछ को सौंपा गया

जिन्होंने अध्यात्म तथा संगीत की साधना के दायरे से थोड़ा बाहर जाकर इसे अपनी अजीविका का साधन बना लिया। आगे चलकर ये गायक तथा वाचक जातियों में बदल गये। गायक जातियाँ उसी परम्परा से मानी गई।

अध्ययन के उद्देश्य

1. प्रमुख राजघरानों में लोक गायन की विकास यात्रा का अध्ययन

2. लोक गायन का इतिहास का अध्ययन

साहित्य की समीक्षा

शर्मा डॉ. गोपीनाथ (2013) संस्कृति के संदर्भ में कहा है कि "संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है, संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कृति शब्द का भी यह अर्थ है। संस्कार व्यक्ति के भी होते है, और जाति के भी। जातीय संस्कारों को संस्कृति कहते है।" संस्कृति मनुष्य की आत्मिक, मानसिक व शारीरिक शक्तियों का विकास करती है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपनी योग्यता द्वारा अपनी प्रत्येक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आविष्कार करता है।

अंग्रेजी भाषा में "संस्कृति" के लिये कल्चर (Culture) शब्द का प्रयोग किया गया है। संस्कृति और कल्चर शब्द मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों एवं शक्तियों तथा उसके परिमार्जन के परिचायक है। संस्कृति शब्द का शाब्दिक अर्थ है- "अत्यंत शुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्य, जो परम्परा का रूप लेकर सभ्यता का विकास करते हैं। समाज की सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, राजनैतिक तथा वैज्ञानिक उन्नति संस्कृति पर भी निर्भर करती है।

पाउलेट, पी डब्ल्यू (2014) संस्कृति इतिहास का दर्पण है, जो समाज को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने हेतु मार्गदर्शक का कार्य करती है। संस्कृति मानव जाति की पूर्व परम्पराएँ, पूर्वजों से चले आ रहे संस्कार जिनमें प्राचीनता और नवीनता दोनों का मिश्रण हो, वह "संस्कृति" कहलाती है। संस्कृति में मानव के नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश होता है, जो मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन और नियंत्रण करती है। प्रत्येक जाति का अपना अलग वांशिक व भौगोलिक वातावरण होता है, और उसकी अपनी रूचि, समझ, विचार, विश्वास, आचरण व रीति-रिवाज़ होते हैं, जिनके अनुरूप ही उनकी संस्कृति का निर्माण होता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है, जो हमें जीवन जीने का ढंग सिखाती है।

अतः संस्कृति उन संस्कारों से सम्बंधित है, जो मनुष्य के वंश-परम्परा तथा सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन है। इनके माध्यम से सामाजिक व्यवहार की विशिष्टताओं का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निगमन होता है।

गुप्ता, मोहनलाल (2014) राजस्थानी लोक गीतों में शास्त्रीय तत्व विषय के स्पष्टीकरण के लिए सर्वप्रथम शास्त्र शब्द को स्पष्ट करना आवश्यक है। सामान्यतः शास्त्र शब्द "शासनात् शास्त्रम" होता है अर्थात् शास्त्र का व्युत्पत्तिपरक अर्थ शासन करने वाला है। यह शासन मनुष्य को श्रेष्ठ कार्य में प्रवृत्त करने तथा दुष्कृतियों से निवृत्त करने वाला (विधि प्रतिषेध परक) होता है। जैसे हमारे प्राचीन वेद स्मृति, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थ मनुष्य को सत् पथ पर प्रवृत्त होने और असत् पथ से निवृत्त होने की प्रेरणा देते हैं। इसीलिये वे शास्त्र कहलाते हैं। संगीत का मुख्य प्रयोजन प्रवृत्ति निवृत्ति नहीं अपितु रसास्वादन या "सद्यः परनिवृत्तिः" है। संगीत के लिये शास्त्र शब्द शासनात् शास्त्रम् को लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ है। अपितु शांसनात् शास्त्रम् को लेकर प्रवृत्त हुआ माना जा सकता है। शंसन का अर्थ है किसी गूढ़ तत्वों का शंसन या प्रतिवादन करने वाले गन्थ ही शास्त्र कहलाते हैं।

डेटा विश्लेषण

जयपुर-अतरौली घराना

जयपुर-अतरौली घराना (जिसे जयपुर घराना, अतरौली-जयपुर घराना और अल्लादियाखानी गायकी के नाम से भी जाना जाता है) एक हिंदुस्तानी संगीत शिक्षुता बिरादरी (घराना) है, जिसकी स्थापना 19वीं शताब्दी के अंत में अल्लादिया खान ने की थी। ध्रुपद परंपरा से विकसित, लेकिन ख्याल के लिए जाना जाता है, यह घराने केसरबाई केरकर, मोगुबाई कुर्डीकर, मल्लिकार्जुन मंसूर, किशोरी अमोनकर और अश्विनी भिड़े-देशपांडे जैसे प्रशंसित संगीतकारों के निर्माण के लिए जाना जाता है। नतीजतन, इस घराने ने अपने विशिष्ट मुखर सौंदर्यशास्त्र, राग प्रदर्शनों की सूची और तकनीकी योग्यता के लिए एक प्रतिष्ठा विकसित की।

जयपुर-अतरौली घराना अल्लादिया खान के परिवार से उभरा जो अतरौली (अलीगढ़ के पास) से निकला और जयपुर चला गया। यह घराना मुख्य रूप से ध्रुपद की डागर-

बानी से विकसित हुआ, हालांकि इसने गौहर-बानी और खंडार-बानी के सूक्ष्म सार को भी अवशोषित किया।

डागर घराना

डागर घराना हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की शास्त्रीय रुपद शैली की एक परंपरा है, जो 20 पीढ़ियों तक फैली हुई है, जो स्वामी हरिदास (15 वी शताब्दी) और जयपुर के बेहराम खान (17531878) सहित है। कुछ पीढ़ियों तक इसके सदस्य जयपुर, उदयपुर और मेवाड के दरवारों से जुड़े। डागर घराने की मुख्य विशेषता आलाप जोर झाला का परिष्कृत, सूक्ष्म शात और कठोर प्रदर्शन, जिसमे राम की सूमाताओं को चित्रित करने वाले सूक्ष्म अंतर पर बहुत ध्यान दिया जाता है, जिसे अक्सर अन्यथा अनदेखा या खो दिया 20वीं शताब्दी तक यह विशेष रूप से एक मुखर शैली थी (कम से का प्रदर्शन में), लेकिन रुद्र वीणा में जिया मोहिदीन डागर के नवाचारी के बाद से - उस उपकरण प्रदर्शन में एक स्थान पाया है जो मुखर तकनीक के विभक्ति और शैली का बारीकी से पालन करता है।

मेवाती घराना

मेवाती धराना (जिसे जयपुर मेवाती धराना, जोधपुर राना और गिया बदे अली खान बीनकर घराना के नाम से भी जाना जाता है) हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक संगीत शिक्षुता जनजाति है। पंडित जसराज के संगीत वर्ग के लिए जाना जाता है, घराने की स्थापना उदित भाइयों ने की थी। इस घराने के सदस्यों का भारतीय सिनेमा में आधी सदी से भी अधिक समय से सक्रिय प्रभाव रहा है। अपने स्वय के विशिष्ट सौंदर्यशास्त्र शैली प्रथाओ और प्रदर्शनों की सूची के साथ घराना खसरानी पदम्बालियर और लाल पवनसंगीत परपराओं की एक शाखा के रूपमउभरा। 40 जसराज गायकी को लोकप्रिय बनाया।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि हर काल (युग) में तथा हर परिस्थिति में इन राजपूत वंशजों ने राजस्थान के लोक संगीत के संरक्षण एवं विकास में अपना हर सम्भव योगदान दिया है, तथा राजस्थान में लोकगायन के विकास एवं संरक्षण में राजघरानों की भूमिका में प्राकल्पना सकारात्मक सिद्ध होती है। ऐसे लोक गायनों का संरक्षण अनिवार्य है क्योंकि ये मनमाना गीत नहीं हैं वे हमारे इतिहास और संस्कृति का मौखिक पाठ हैं, जो प्रेम और भक्ति, संघर्ष और नवीनीकरण की कहानियां सुनाते हैं। ये गीत प्रवासी भारतीयों को भी अपनेपन का एहसास कराते हैं। पिछले कुछ वर्षों में घटते शास्त्रीय भारतीय कला रूपों के आलोक में, रणथंभौर महोत्सव ने चीजों को बदलने की कोशिश की। इस त्यौहार ने विभिन्न लुप्तप्राय प्रजातियों और कला रूपों के संरक्षण के पाठ्यक्रम पर प्रकाश डाला और सहायता की। इस कार्यक्रम में लोक, फ्यूजन संगीत के साथ-साथ नृत्य प्रदर्शन भी शामिल थे। इस उत्सव के पीछे का कारण न केवल संगीतकारों को सुर्खियों में लाना था बल्कि उनके संगीत के संरक्षण में सहायता और सहायता करना भी था। देश की इस उतार-चढाव भरी जीवन शैली में संरक्षण की कमी के कारण उनकी कला का रूप धीरे-धीरे, लेकिन सकारात्मक रूप से क्षीण हो रहा है। इस उत्सव में लगभग 35 विभिन्न कलाकारों ने अपनी प्रतिभा को उजागर किया और उन्हें भारत और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने के लिए उन्हें फिर से प्रेरित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. शर्मा डॉ. गोपीनाथ राजस्थान का इतिहास प्रारंभिक काल से मध्य युग तक, प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पाउलेट, पी डब्ल्यू गजेटियर ऑफ जयपुर
2. गुप्ता, मोहनलाल जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, नवभारत प्रकाशन, जोधपुर
3. शर्मा, डॉ.सी एल मत्स्य संघ का पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक इतिहास, मालती प्रकाशन, जयपुर
4. शर्मा, डॉ. सी एल मत्स्य संघ का पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक इतिहास
5. गुप्ता, मोहनलाल जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन
6. गुप्ता, मोहनलाल जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन
7. गहलोत, जगदीश सिंह कछवाहों का इतिहास, यूनीक ट्रेडर्स, जयपुर
8. गुप्ता, मोहनलाल जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन
9. शर्मा, डॉ.सी एल मत्स्य संघ का पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक इतिहास

10. शर्मा, डॉ. मथुरालाल एवं डॉ. बेनी गुप्ता श्यामलाल कृत वीर विनोद, राजस्थानी ग्रंथगार, जोधपुर

11. गुप्ता, मोहनलाल जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

Corresponding Author

Bhavna Vijay Mankar*

Research Scholar